econtent Of Arts <econtentofarts@gmail.com>

International Law: Meaning , Definition, Significance, Weakness,New trends and Suggestions for Improvement.M A(4th Semester)Anjani Kumar Ghosh, Political Science।

1 message

ANJANI GHOSH <anjanighosh51@gmail.com> Sun, Aug 9, 2020 at 8:02 AM
To: econtentofarts@gmail.com

अंतरराष्ट्रीय कानून

अन्तर्राष्ट्रीय कानून उन नियमों का समूह है जिनके अनुसार सभ्य राज्य शान्तिकाल तथा युद्धकाल में एक-दूसरे के साथ व्यवहार करते हैं । 'अन्तर्राष्ट्रीय कानून' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम 1780 में जेरेमी बेन्थम द्वारा किया गया । यह शब्द 'राष्ट्रों का कानून' (Law of nations) का पर्यायवाची है । अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अर्थ को समझने के लिए इसकी विविध परिभाषाओं पर विचार करना आवश्यक है ।'

ओपेनहीम के अनुसार- "अन्तर्राष्ट्रीय कानून उन प्रयोगों में आने वाले तथा सन्धियों में प्रयोग किए जाने वाले नियमों का नाम है जिनको सभ्य राज्य पारस्परिक व्यवहारों में प्रयोग करने के लिए बाध्य होता है ।"

ह्यूज के अनुसार- "अन्तर्राष्ट्रीय कानून ऐसे सिद्धान्तों का समूह है जिनको सभ्य राष्ट्र पारस्परिक व्यवहार में प्रयोग करना बाध्यकारी समझते हैं । यह कानून सर्वोच्चता सम्पन्न राज्यों की स्वीकृति पर निर्भर है ।"

हैन्स केल्सन के अनुसार- "राष्ट्रों की विधि अथवा अन्तर्राष्ट्रीय विधि की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है कि वह नियमों और सिद्धान्तों का एक संकलन है जिसके अनुसार कार्य करना पारस्परिक व्यवहार में सभ्य राज्यों के लिए आवश्यक है ।"

सर हेनरीमैन के अनुसार- "राष्ट्रों की विधि भिन्न-भिन्न तत्वों की एक जटिल योजना है । उसमें अधिकारों तथा न्याय के साधारण सिद्धान्त निहित हैं । इनका प्रयोग समान रूप से राज्यों के व्यक्ति तथा राज्य पारस्परिक व्यवहारों में कर सकते हैं । यह एक निश्चित कानूनों की संहिता है रीति-रिवाजों और विचारों का संकलन है जिनका प्रयोग पारस्परिक व्यवहार में राज्यों के बीच किया जा सकता है ।"

डॉ. समूर्णानन्द के अनुसार- "अन्तर्राष्ट्रीय विधान उन नियमों और प्रथाओं के समूह को कहते हैं जिनके अनुसार सभ्य राज्य एक-दूसरे के साथ प्राय: बर्ताव करते हैं ।"

हाल के अनुसार- "अन्तर्राष्ट्रीय कानून आचरण के ऐसे नियम हैं जिन्हें वर्तमान सभ्य राज्य एक-दूसरे के साथ व्यवहार में ऐसी शक्ति के साथ बाधित रूप से पालन करने योग्य समझते हैं जिनके साथ सद्विवेकी कर्तव्यपरायण व्यक्ति अपने देश के कानूनों का पालन करते हैं । वे यह भी समझते हैं कि यदि इनका उल्लंघन किया गया तो उपयुक्त साधनों द्वारा उन्हें लागू किया जा सकता है ।"

स्टार्क के अनुसार- "अन्तर्राष्ट्रीय कानून का यह लक्षण किया जा सकता है कि यह ऐसा कानून समूह है जिसके अधिकांश भाग का निर्माण उन सिद्धान्तों तथा आचरण के नियमों से हुआ है जिनके सम्बन्ध में राज्य यह अनुभव करते हैं कि वे इनका पालन करने के लिए बाध्य हैं ।"

इसमें निम्न प्रकार के नियम भी सम्मिलित हैं:-

(a) अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं तथा संगठनों की कार्यप्रणाली से सम्बन्ध रखने वाले तथा इन संस्थाओं के राज्यों तथा व्यक्तियों से सम्बन्ध रखने वाले कानून के नियम ।

(b) व्यक्तियों से तथा राज्येतर सत्ताओं से सम्बन्ध रखने वाले कानून के नियम ।

अन्तर्राष्ट्रीय कानून की विभिन्न परिभाषाओं को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि, यद्यपि विचारकों ने भिन्न-भिन्न शब्दों का प्रयोग किया है, किन्तु उनके बीच अर्थ की दृष्टि से विशेष अन्तर नहीं है ।

इन परिभाषाओं से निम्न बातें सामने आती हैं:-

(i) अन्तर्राष्ट्रीय कानून राज्यों के पारस्परिक व्यवहार का नियमन करते हैं ।

(ii) ये कानून सिद्धान्तों अथवा नियमों का समूह हैं ।

(iii) ये राज्यों अथवा सामान्य अन्तर्राष्ट्रीय समाज द्वारा स्वीकृत होते हैं ।

(iv) इनका स्रोत परम्पराएं, प्रथाएं, न्यायालय के निर्णय एवं सभ्यता के आधारभूत गुण, आदि हैं ।

(v) इनका पालन सद्भावना एवं कर्तव्यपालन के दायित्व के कारण किया जाता है । ये सभ्य राज्यों द्वारा स्वयं पर लगाए गए प्रतिबन्ध हैं ।

(vi) इनका उद्देश्य राज्यों के अधिकारों की परिभाषा करना, राज्यों के मध्य विवादों को निपटाना एवं सहयोगपूर्ण व्यवहार विकसित करना, आदि है ।

अन्तर्राष्ट्रीय कानून का महत्व तथा आवश्यकता :-

वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक व्यवस्था में अन्तर्राष्ट्रीय कानून की आवश्यकता इस प्रकार दर्शायी जा सकती है:-

(1) अराजकता से बचाव:-

मनुस्मृति में कहा गया है कि, मानव को पारस्परिक संगठन बनाने के लिए अथवा राष्ट्र के रूप में संगठित होने के लिए आपस में पारस्परिक व्यवहार के लिए कुछ नियमों का निर्माण करना पड़ता है और उन नियमों का पालन करना पड़ता है, अन्यथा अराजकता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है । अव्यवस्था अशान्ति अराजकता तथा अनिश्चितता पूर्ण परिस्थितियों के निराकरण के अनेक प्रयासों में अन्तर्राष्ट्रीय कानून का अनुशीलन विशेष रूप से महत्व रखता है ।

(2) शक्ति संघर्ष को परिसीमित करना:-

अन्तराष्ट्रीय राजनीति शक्ति संघर्ष की राजनीति है । शक्ति संघर्ष की इस राजनीति में छोटे एवं बड़े राज्य अपने राष्ट्रीय हितों की पूर्ति के लिए कार्यरत रहते हैं । अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष को अन्तर्राष्ट्रीय कानून के प्रतिबन्ध द्वारा सीमित दायरे में रखा जाता है ।

चाहे वह छोटा राज्य हो अथवा बडा किसी भी कार्यकलाप को करने से पहले यह विचार कर लेता है कि क्या उसकी नीतियों से अन्तर्राष्ट्रीय कानून की उपेक्षा तो नहीं हो रही है ? दूसरे शब्दों में राज्यों के व्यवहारों में अन्तर्राष्ट्रीय कानून द्वारा 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' या 'मत्स्य न्याय' की धारणा को गलत साबित कर दिया गया है ।

(3) विश्वशान्ति का आधार तैयार करना:-

विश्वशान्ति आज के युग की सबसे बड़ी आवश्यकता है । अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों के द्वारा राष्ट्रों के व्यवहारों हेतु सामान्य नियमों का 'सार्वभौमिक' निर्धारण किया जाता है । यदि विश्व के समस्त राज्य अन्तर्राष्ट्रीय कानून का समान भाव से आदर करने लग जाएं तो राज्यों के बीच होने वाले मतभेदों एवं संघर्षों को टाला जा सकता है । अन्तर्राष्ट्रीय कानून एक ऐसे विश्व का निर्माण करने का साधन हो सकता है जिसमें संघर्षों के बजाय सहयोग का प्राबल्य हो ।

(4) विश्व सरकार की प्राथमिक आवश्यकता को पूरा करना:-

प्रसिद्ध दार्शनिक बर्ट्रेण्ड रसेल के अनुसार विश्व सरकार (World government) के द्वारा ही विश्वशान्ति की स्थापना की जा सकती है । जब तक राष्ट्रों में उग्र राष्ट्रीयता एवं सम्प्रभुता की भावना विद्यमान रहेगी विश्व सरकार एक सपना ही बना रहेगा किन्तु यदि अन्तर्राष्ट्रीय कानून की पर्याप्त रचना की जाए, विभिन्न राज्यों में इसके प्रयोग से लाभों का समुचित प्रसार किया जाए तो राज्य सहज में इसका प्रयोग करने लग जाएंगे । उग्र सम्प्रभुता जिसका अन्ततोगत्वा परिणाम युद्ध होता है, का निश्चित रूप से परित्याग होगा और निकट भविष्य में विश्व सरकार की धारणा की पूर्ति की जा सकेगी ।

(5) आणविक तथा संहारक शस्त्रों से सुरक्षा:-

विज्ञान तथा तकनीकी विकास के परिणामस्वरूप विभिन्न राष्ट्रों के पास संहारक शस्त्रों की मात्रा में भयानक वृद्धि हो चुकी है । विश्व की महान् शक्तियों के मध्य संहारक शस्त्रों के निर्माण की भयानक प्रतिस्पर्द्धा चल रही है । आज अमरीका, रूस, फ्रांस तथा चीन के पास आणविक एवं हाइड्रोजन शस्त्रों का विशाल भण्डार है ।

विभिन्न राष्ट्रों में आपसी मनमुटाव के कारण शस्त्रीकरण की प्रतिस्पर्द्धा को रोका नहीं जा सकता । नि:शस्त्रीकरण के लिए किए गए विभिन्न प्रयास असफल सिद्ध हुए हैं । ऐसी स्थिति में अन्तर्राष्ट्रीय कानून ही मानवता को सुरक्षा प्रदान कर सकते हैं । इस समय इन कानूनों के द्वारा ही युद्धों में विषैले एवं भयानक शस्त्रों के प्रयोग पर प्रतिबन्ध लगाए गए हैं ।

(6) युद्धों का न्यायपूर्वक संचालन:-

जिस प्रकार राष्ट्रीय कानून की उपस्थिति में भी छोटे-छोटे मतभेदों को लेकर व्यक्तियों में संघर्ष उत्पन्न हो जाते हैं उसी प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय नियमों के उपरान्त भी विभिन्न राज्यों के मध्य राष्ट्रीय हितों के महत्वपूर्ण (vital) प्रश्नों को लेकर उग्रतर मतभेद पैदा हो जाते हैं और युद्ध प्रारम्भ हो जाते हैं ।

अभी वह स्थिति नहीं आयी है कि युद्धों का समूल परित्याग हो जाए । विभिन्न राज्यों के मध्य चलने वाले युद्धों को अन्तर्राष्ट्रीय कानून द्वारा व्यावहारिकता प्रदान की जाती है । युद्ध करना अपराध नहीं है, किन्तु युद्ध में अन्तर्राष्ट्रीय कानून की उपेक्षा करना घोर निन्दनीय अपराध माना जाता है । यदि युद्ध का संचालन करने के लिए पर्याप्त कानून न हों तो युद्धग्रस्त राष्ट्रों की जनता को अपार क्षति उठानी पड सकती है ।

(7) राष्ट्रों के मध्य आर्थिक एवं व्यावसायिक क्रियाकलापों का संचालन:-

वैज्ञानिक आविष्कारों यातायात एवं संचार के साधनों की अभूतपूर्व उन्नति के कारण सब देशों के सम्बन्ध एक-दूसरे के साथ बढ रहे हैं एक-दूसरे पर निर्भरता में निरन्तर वृद्धि हो रही है । आर्थिक व्यापारिक प्राविधिक शैक्षणिक राजनीतिक आवश्यकताओं के कारण विभिन्न देशों के पारस्परिक सम्बन्ध इतने प्रगाढ़ हो रहे हैं कि इस समय कोई भी सभ्य राष्ट्र दूसरे राष्ट्रों से सर्वथा पृथक् रहकर न तो किसी प्रकार की उन्नति कर सकता है और न अपना चहुंमुखी विकास ही ।

आज छोटे और बडे सभी राज्य आपसी लेन-देन और आदान-प्रदान द्वारा ही अपनी जरूरतों को पूरा कर पाते हैं । राज्यों के बीच व्यापार दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है । इन सारी स्थितियों का सुविधापूर्वक संचालन अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अभाव में आसानी से किया जाना असम्भव ही प्रतीत होता है ।

(8) कूटनीतिक गतिविधियों का संचालन:-

विभित्र राज्यों के आपसी सम्बन्धों का संचालन कूटनीतिक प्रतिनिधियों द्वारा किया जाता है । एक राज्य के राजनयिक प्रतिनिधि दूसरे राज्य में निवास करते हैं । अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अभाव में राजनयिक प्रतिनिधियों का कार्य अत्यन्त दुष्कर हो जाएगा ।

इनकी समस्त गतिविधियों का निर्धारण वियना अभिसमय, 1961 (जो अन्तर्राष्ट्रीय कानून का भाग है) द्वारा किया जाता है । निष्कर्षत: अन्तर्राष्ट्रीय कानून का महत्व द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद लगातार बढ़ता जा रहा है । आज युद्ध से त्रस्त मानवता की रक्षा का यह अप्रतिम साधन बन चुका है ।

अन्तर्राष्ट्रीय कानून: विधिशास्त्र का लोप बिन्दु है:-

अन्तर्राष्ट्रीय कानून के सम्बन्ध में आचार्यों के भिन्न-भिन्न मत हैं । कोई तो इसे विधिशास अथवा न्यायशास्त्र (Jurisprudence) का अंग मानते हैं और कुछ विद्वान इसे नीतिशास्त्र (ethics) से उच्च स्थान नहीं देते । राज्यों की समक्षता के सम्बन्ध में एकलवादी दृष्टिकोण प्रकट करने वाले पुराने विधिशास्त्रियों का मत है कि अन्तर्राष्ट्रीय कानून का अस्तित्व ही नहीं है । दूसरी तरफ हाल तथा लारेन्स ने यह मत व्यक्त किया है कि अन्तर्राष्ट्रीय कानून अन्तर्राष्ट्रीय नैतिकता से पूर्णतया भिन्न है और विधि की भांति क्रियाशील है ।

अन्तर्राष्ट्रीय कानून को कानून न स्वीकार करने वाले विचारकों में जॉन आस्टिन, कालरिज, हॉब्स, प्यूफेनडार्फ, हॉलैण्ड, जेथरो ब्राउन लार्ड सेल्सबरी आदि प्रमुख हैं ।

ऑस्टिन के अनुसार- "अन्तर्राष्ट्रीय कानून एक सच्चा कानून है ही नहीं । यह तो नैतिक नियमों की एक संहिता मात्र है ।" वे कहते हैं कि कानून के पीछे बाध्यकारी शक्ति होना परम आवश्यक है । यदि इस दृष्टि से अन्तर्राष्ट्रीय कानून पर विचार किया जाए तो वह कानून नहीं कहा जा सकता । अन्तर्राष्ट्रीय कानून के पीछे केवल नैतिक शक्ति (moral force) होती है । इसका पालन राज्यों की सामान्य स्वीकृति के आधार पर किया जाता है ।

हॉलैण्ड के अनुसार- "अन्तर्राष्ट्रीय कानून विधिशास्त्र का लोप बिन्दु अथवा पतनोन्मुख केन्द्र (Vanishing Point of Jurisprudence) है । इससे अर्थ यह लिया जा सकता है कि अन्तर्राष्ट्रीय कानून को विधिशास्त्र का अंग नहीं माना जा सकता क्योंकि इससे पहले ही विधिशास्त्र की सीमाएं समाप्त हो जाती हैं ।"

दो कारणों से हॉलैण्ड अन्तर्राष्ट्रीय कानून को विधिशास का तिरोधान बिन्दु मानता है:-

(i) पहला कारण यह है कि, इसमें दोनों पक्षों के ऊपर, राज्यों के पारस्परिक विवाद का निर्णय करने वाली कोई शक्ति नहीं है ।

(ii) दूसरा कारण यह है कि, ज्यों-ज्यों राज्यों के एक बड़े अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय में संगठित होने से अन्तर्राष्ट्रीय नियम कानूनों जैसा रूप धारण करने लगते हैं त्यों-त्यों इसका यह स्वरूप लुप्त होता जाता है और संघीय सरकार के सार्वजनिक कानून (जो एक कमजोर कानून होता है) के रूप में बदलता जाता है ।

जेथरो ब्राउन के अनुसार- " अन्तर्राष्ट्रीय विधि विधि की अवस्था तक पहुंचने का प्रयल कर रही है । अभी तो यह मार्ग में ही है और विधि की हैसियत से जीवित रहने के लिए संघर्षरत है ।"

गार्नर के अनुसार- "समुचित बाध्यता का अभाव सदा से और आज भी अन्तर्राष्ट्रीय कानून की मुख्यत: दुर्बलता है और भविष्य के समक्ष मुख्य आवश्यक कार्यों में से एक है-ऐसी बाध्यता प्रदान करना ।"

लॉर्ड सैलिसबरी के अनुसार- "अन्तर्राष्ट्रीय कानून किसी न्यायाधिकरण द्वारा प्रवर्तित नहीं होता इसलिए उसे असाधारण अर्थों में कानून कहना भ्रमात्मक है ।"

उपर्युक्त लेखकों एवं कानूनवेत्ताओं के विचारों का विश्लेषण किया जाए तो अन्तर्राष्ट्रीय कानून को कानून न मानने के निम्नलिखित कारण बताए जा सकते हैं:-

(1) बाध्यकारी शक्ति का अभाव:-

साधारणतया कानून का पालन करवाने के लिए बाध्यकारी शक्ति का होना आवश्यक है । राज्यों में संसद तथा व्यवस्थापिकाओं द्वारा निर्मित कानून का पालन शक्ति द्वारा करवाया जाता है जबकि अन्तर्राष्ट्रीय कानून सदस्य राज्यों की सदइच्छा पर निर्भर रह जाता है । कानून बनाने वाली सत्ता हमेशा उच्चतम होती है और भौतिक शक्ति के सहारे यह दूसरे लोगों को भी कानून का पालन करने के लिए बाध्य कर सकती है । अन्तर्राष्ट्रीय कानून में इन सबका अभाव है ।

(2) कानून सम्प्रभु के आदेश होते हैं:-

कानूनों का निर्माण निश्चित व्यक्ति अथवा निश्चित सम्प्रभु निकाय द्वारा किया जाता है । अन्तर्राष्ट्रीय कानून का निर्माण करने वाली सम्पभु संस्थाओं एवं व्यक्तियों का अभाव है । ऐसी स्थिति में अन्तर्राष्ट्रीय कानून एक कल्पनामात्र है ।

(3) व्याख्या करने वाली संस्था का अभाव:-

कानूनों की व्याख्या करने वाली संस्थाओं के द्वारा विवादों का निर्णय एवं कानूनों का महत्व स्पष्ट किया जाता है । राज्यों में यह कार्य न्यायालय करते हैं, किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय कानून की व्याख्या के लिए कोई उपयुक्त व्यवस्था नहीं है और इस प्रकार इनके उल्लंघन का निर्णय सही प्रकार नहीं हो पाता ।

उदाहरण के लिए, वियतनाम संघर्ष तथा भारत-पाक युद्ध में अन्तर्राष्ट्रीय कानून का कई बार उल्लंघन हुआ किन्तु इसका निर्णय नहीं हो सका कि कानून की अवहेलना किस पक्ष ने की है । इस सम्बन्ध में अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय की शक्तियां भी पर्याप्त रूप से सीमित हैं ।

(4) अन्तर्राष्ट्रीय कार्यपालिका का अभाव:-

कानूनों को कार्यान्वित करने का कार्य कार्यपालिका का है । अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय कानून के लागू करने के लिए कोई कार्यपालिका निकाय नहीं है । ऐसी स्थिति में वे केवल आदर्श इच्छामात्र ही बनकर रह जाते हैं ।

(5) संहिता का अभाव:-

कानूनों के अस्तित्व की बोधता संहिताओं के द्वारा होती है । अन्तर्राष्ट्रीय कानून अधिकांशत: प्रथाओं पर आधारित हैं और अस्पष्ट तथा अनिश्चित हैं । ऐसे अनिश्चित कानून को 'कानून' कहना अतिरंजनपूर्ण तथा बेहूदा है ।

इन्हीं तर्कों के कारण कतिपय विधिशासी अन्तर्राष्ट्रीय कानून को कानून की कोटि में नहीं रखते । वे अन्तर्राष्ट्रीय कानून को केवल नम्रतावश (Law of courtesy) ही कानून की संज्ञा प्रदान करते हैं । इनके अनुसार इसको कानून के स्थान पर शुद्ध नैतिकता (Positive Morality) कहा जाना उचित होगा ।

किन्तु हॉब्स तथा ऑस्टिन के विचार अब अतीत की वस्तु बन चुके हैं । आधुनिक विधिशासियों ने उपर्युक्त तर्कों का जोरदार शब्दों में खण्डन किया है, तथा प्रबल दलील के आधार पर अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अस्तित्व की स्थापना की है । **अन्तर्राष्ट्रीय कानून के पक्ष में दिए गए तर्क :-**

सर हेनरीमैन, लार्ड रसेल, ब्रियर्ली, स्टार्क, ओपेनहीम, आदि विधिशास्त्रियों ने अन्तर्राष्ट्रीय कानून को एक वास्तविकता माना है । इसमें कोई सन्देह नहीं है कि, अन्तर्राष्ट्रीय कानून राष्ट्रीय कानून से कम शास्ति सूचक तथा अस्पष्ट हैं तथापि यह कानून हैं ।

विधि के पीछे केवल दबाव ही आवश्यक नहीं है । साधारण राष्ट्रीय विधि के समान अन्तर्राष्ट्रीय विधि की भी कभी-कभी उपेक्षा की जाती है, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि विधि का अस्तित्व ही नहीं हे । सर हेनरीमैन के अनुसार किसी नियम को कानून बनाने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि उसके पीछे कोई बाध्यकारी शक्ति हो ।

सर हेनरी बर्कले के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय कानून का अस्तित्व तब हो सकता है, जब सभी राष्ट्र आपस में सहमत होकर कानून की बाध्यता को स्वीकार कर लेते हैं यह सामान्य स्वीकृति ठीक वैसी ही है जैसी राष्ट्रीय कानून के प्रसंग में विभिन्न नागरिकों की होती है । यदि कोई राष्ट्र इस कानून को भंग करे तो सम्बन्धित राष्ट्र को कानून का उल्लंघनकर्ता माना जाएगा किन्तु कानून यथावत् बना रहेगा ।

विधि की अवहेलना करने से ही विधि का अस्तित्व समाप्त नहीं हो जाता । पोलक के मतानुसार- "अन्तर्राष्ट्रीय कानून का आधार यदि केवल नैतिकता रही होती तो विभिन्न राज्यों द्वारा विदेश नीति की रचना नैतिक तर्कों के आधार पर ही की जाती किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं होता ।

विभिन्न राष्ट्र जब किसी बात का औचित्य सिद्ध करना चाहते हैं तो इसके लिए वे नैतिक भावनाओं का सहारा नहीं लेते वरन् पहले के उदाहरणों सन्धियों एवं विशेषज्ञों की सम्मतियों का सहारा लेते हैं । कानून के अस्तित्व के लिए आवश्यक शर्त केवल यही है कि एक राजनीतिक समुदाय होना चाहिए और उसके सदस्यों को यह समझना चाहिए कि उन्हें आवश्यक रूप से कुछ नियमों का पालन करना है ।"

स्टार्क ने भी ऑस्टिन के मत की निम्न तर्कों के आधार पर आलोचना करते हुए अन्तर्राष्ट्रीय कानून का प्रबल समर्थन किया है:-

(i) वर्तमान ऐतिहासिक न्यायशास्त्र में कानून के सिद्धान्त में बल के प्रयोग को निकाल दिया गया है । यह बात सिद्ध हो गयी है कि बहुत-से राज्यों में इस प्रकार से कानून माने जाते हैं जिनका निर्माण उन राज्यों की व्यवस्थापिका द्वारा नहीं हुआ है ।

(ii) ऑस्टिन का सिद्धान्त उनके समाज में कदाचित ठीक हो परन्तु वर्तमान समय में वह ठीक नहीं है । पिछली अर्द्धशताब्दी में अनेक अन्तर्राष्ट्रीय विधियां अस्तित्व में आ गयी हैं । ये विधियां अनेक समझौते और सन्धियों के फलस्वरूप अस्तित्व में आयी हैं ।

(iii) अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों को सदैव वैधानिक विधियों के समान मान्यता दी जाती है । भिन्न-भिन्न राष्ट्रीय सरकारों और वैदेशिक कार्यालयों के अन्तर्राष्ट्रीय कार्यों में सदा इन बातों को विधि के समान ही मान्यता दी गयी है ।

ओपेनहीम ने कानून को परिभाषित करते हुए कहा है कि- "कानून किसी समाज के अन्तर्गत लोगों के आचरण के लिए उन नियमों के समूहों का नाम है जो उस समाज की सामान्य स्वीकृति से एक बाह्य शक्ति द्वारा लागू किए जाते हैं ।"

प्रो. ओपेनहीम की इस परिभाषा में कानून के अस्तित्व के लिए जिन बातों को आवश्यक माना गया है, वे हैं:-

(a) समुदाय,

(b) नियमों का संग्रह,

(c) नियमों का पालन कराने वाली बाह्य शक्ति ।

ओपेनहीम के अनुसार पहली शर्त समुदाय की है । इस समय राष्ट्रसंघ संयुक्त राष्ट्रसंघ तथा अनेक आपसी सहयोग करने वाली संस्थाओं के माध्यम से अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय का निर्माण किया गया है । ओपेनहीम की दूसरी शर्त इस समुदाय के व्यवहार के लिए नियमों की सत्ता है ।

इस समय अनेक अन्तर्राष्ट्रीय परम्पराएं तथा सन्धियां एवं संहिताएं उपलब्ध हैं जैसे 1961 का राजदूतों की नियुक्ति से सम्बन्धित वियना अभिसमय, 1949 का युद्धबन्दियों सम्बन्धी अभिसमय, 1907 का हेग अभिसमय, इत्यादि ।

ओपेनहीम की तीसरी शर्त इन कानूनों का पालन कराने वाली सत्ता की आवश्यकता है । संयुक्त राष्ट्रसंघ की सुरक्षा परिषद को यह अधिकार दिया गया है, कि वह अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा को बनाए रखने के लिए आवश्यकतानुसार जल वायु और स्थल सेना का प्रयोग कर सके ।

संघ के सदस्य राष्ट्रों ने यह प्रतिज्ञा की है कि वे सुरक्षा परिषद् की मांग पर अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा की स्थापना के लिए आवश्यक सैनिक सहायता प्रदान करेंगे । कोरिया कांगो मिस्र आदि विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय विवादों के समय सदस्य राष्ट्रों ने अपने इस वचन को पूरा करने की चेष्टा की है ।

ओपेनहीम के अनुसार सभी राज्य तथा सरकारें अन्तर्राष्ट्रीय कानून को आदर की दृष्टि से देखती हैं । केन्द्रीय सत्ता के अभाव में शक्तिशाली राज्यों ने हस्तक्षेप के माध्यम से यदा-कदा कानून को लागू किया है । यद्यपि राष्ट्रीय कानूनों की तुलना में यह कमजोर कानून है क्योंकि यह उस बाध्यता के साथ लागू नहीं किया जा सकता जिस शक्ति के साथ राज्यों के कानून लागू होते हैं ।

फिर भी कमजोर कानून कानून ही है । राज्यों के आपसी व्यवहार में भी अन्तर्राष्ट्रीय कानून को स्वीकार किया गया है । विभिन्न राज्यों की सरकारें अन्तर्राष्ट्रीय कानून से अपने आपको बाध्य मानती हैं । ओपेनहीम के अनुसार, अन्तर्राष्ट्रीय कानून का उल्लंघन प्राय: होता रहता है किन्तु कानून को भंग करने वाले राज्यों ने अपने कार्यों की पुष्टि कानून के द्वारा ही करने का सदैव प्रयास किया है । कानून को तोड़ने के उपरान्त भी वे कानून के अस्तित्व को आदर की दृष्टि से मानते हैं ।

संक्षेप में, हम अन्तर्राष्ट्रीय कानून को कानून न मानने वालों के तर्कों का खण्डन निम्नलिखित आधारों पर कर सकते हैं:-

(1) अन्तर्राष्ट्रीय कानून नैतिकता से भिन्न हैं:-

विभिन्न राष्ट्र अन्तर्राष्ट्रीय कानून को कानून की भांति ही मानते हैं । नैतिकता के नियमों की यह विशेषता है कि वे केवल अन्त:करण पर ही प्रभाव डालते हैं इनके पालन कराने का साधन अन्त करण ही है । इसके सर्वथा विपरीत कानून का पालन बाह्यशक्ति द्वारा बलपूर्वक कराया जाता है । अन्तर्राष्ट्रीय कानून को तोड़ने पर सुरक्षा परिषद् के प्रतिबन्ध लोकमत द्वारा निन्दा आदि को सहन करना पड़ता है ।

(2) अन्तर्राष्ट्रीय कानून की अवहेलना का अर्थ कानून के अस्तित्व का अभाव नहीं है:-

कानून की विशेषता तो उसका पालन है किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में बड़ी अराजकता दृष्टिगोचर होती है । शक्तिशाली राष्ट्र कानूनों को तोड़ते रहते हैं, किन्तु नियमों का उल्लंघनमात्र से उनके अभाव की कल्पना नहीं की जा सकती । सभी देशों में चोरी डकैती आदि को रोकने के लिए नियम बने हुए हैं फिर भी वे अवैध कार्य होते रहते हैं किन्तु इसका यह मतलब नहीं है कि वहां कानूनों की सत्ता नहीं है ।

(3) सभ्य राष्ट्रों ने अन्तर्राष्ट्रीय कानून को मान्यता प्रदान की है:-

आधुनिक समय में अधिकांश राज्य अन्तर्राष्ट्रीय रिवाजों तथा सन्धियों का आदर करना पसन्द करते हैं । जो राज्य इसकी अवहेलना करते हैं वे भी अपने कार्यों की पुष्टि में अन्तर्राष्ट्रीय कानून को ही उद्धृत करते हैं । भारत, इंग्लैण्ड, अमरीका के न्यायालयों ने इसकी उपस्थिति स्वीकार की है ।

(4) अन्तर्राष्ट्रीय कानूननिर्मात्री संस्था का प्रादुर्भाव होना:-

वर्तमान समय में संयुक्त राष्ट्रसंघ अन्तर्राष्ट्रीय विधि आयोग, इत्यादि संस्थाओं द्वारा कानूनों के निर्माण का प्रयास किया जा रहा है । स्टार्क के अनुसार अब अन्तर्राष्ट्रीय कानून का निर्माण अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्थापन प्रक्रिया द्वारा तेजी से शुरू हो गया है । किसी भी स्थिति में अन्तर्राष्ट्रीय कानून को सुदृढ़ मान्यता मिल जानी चाहिए ।

(5) अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालयों का निर्णय कानून के आधार पर:-

अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अनुसार राज्यों के मध्य उठे झगड़ों का निर्णय करता है । अन्तर्राष्ट्रीय सन्धियों पंच फैसलों तथा कुछ रीति-रिवाजों के अनुसार कुछ निश्चित सिद्धान्तों का जन्म हो गया है जिन्हें मानना प्रत्येक सभ्य राष्ट्र अपना कर्तव्य समझता है ।

अन्तराष्ट्रीय कानून के स्वरूप (nature) के बारे में उपर्युक्त दोनों विचारधाराओं के तर्कों की विवेचना करने के उपरान्त यह कहना समीचीन प्रतीत होता है कि, अन्तर्राष्ट्रीय कानून वास्तव में कानून है, किन्तु अभी यह उस प्रकार विकसित नहीं हो पाया है, जिस प्रकार सम्प्रभु राज्यों के कानून विकसित हुए हैं । यह अभी भी अपनी शैशवावस्था में है ।

अन्तर्राष्ट्रीय कानून के आधार :-

अन्तर्राष्ट्रीय विधि का सुदृढ़ आधार राज्यों की परस्पर एक-दूसरे पर अन्त:निर्भरता है । वैज्ञानिक आविष्कारों, सन्देशवाहक यन्त्रों तथा आवागमन के साधनों के कारण एक-दूसरे से हजारों मील दूर स्थित राज्य एक-दूसरे के इतने निकट आ गए हैं मानो अब उनके बीच कोई दूरी है ही नहीं ।

राज्यों के बीच राजनीतिक आर्थिक व्यावसायिक सांस्कृतिक आदान-प्रदान आज के विश्व की विशेषता बन गयी है । राज्यों के आपसी आदान-प्रदान को अन्तर्राष्ट्रीय विधि द्वारा नियमित किया जाता है । आज विभिन्न राज्य अन्तर्राष्ट्रीय कानून का पालन करना आवश्यक मानते हैं । राज्य अन्तर्राष्ट्रीय कानून का पालन क्यों करते हैं ?

इस विषय में विधिशास्त्रियों ने दो प्रकार के सिद्धान्तों की रचना की है:-

(1) मूल अधिकारों का सिद्धान्त,

(2) सहमति सिद्धान्त ।

(1) मूल अधिकारों का सिद्धान्त :-

इस सिद्धान्त का आधार सामाजिक समझौता सिद्धान्त की प्राकृतिक अवस्था की मान्यता है । इसके अनुसार राज्यों के कुछ मौलिक अधिकार हैं जिनको वह सुरक्षित रखना चाहता है । इन मूल अधिकारों में स्वतन्त्रता समानता एक-दूसरे के प्रति सम्मान और सुरक्षा हैं । इन अधिकारों के अस्तित्व को बनाए रखने की प्रबल इच्छा के फलस्वरूप ही राष्ट्रों के बीच कानून का जन्म होता है ।

जब राष्ट्रों में पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित हो जाते हैं तो दूसरी आवश्यकता इन सम्बन्धों को सुनिश्चित एवं सुस्पष्ट नियमों द्वारा नियन्त्रित रखने की होती है । जब एक राज्य को अपने मूल अधिकारों को बनाए रखने की इच्छा हुई तो साथ-साथ में उसका यह कर्तव्य भी हो गया कि वह अन्य राष्ट्रों के अधिकारों को मान्यता प्रदान करे । अन्तर्राष्ट्रीय अधिकारों और कर्तव्यों का ही दूसरा नाम अन्तर्राष्ट्रीय कानून है ।

इस सिद्धान्त की आलोचना की जाती है । यह सिद्धान्त व्यक्तियों और राज्यों के सामाजिक सम्बन्ध को गौण समझता है और उनके व्यक्तित्व को अधिक महत्व देता है । यह सिद्धान्त अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का अस्तित्व ही समाप्त कर देता है क्योंकि इसके अन्तर्गत राज्यों की प्रकृति में ही स्वतन्त्रता की कल्पना की जाती है और यह भुला दिया जाता है कि राज्यों का मिलन ऐतिहासिक विकास की अवस्था का परिणाम है ।

(2) सहमति सिद्धान्त :-

सहमति सिद्धान्त के मुख्य समर्थक अस्तित्ववादी (Positivists) हैं । इसके समर्थकों का कथन है कि अन्तर्राष्ट्रीय विधि के नियमों का जन्म राज्यों द्वारा स्वीकृत नियमों के परिणामस्वरूप हुआ है । समस्त राज्यों ने मिलकर इस बात की सहमति दी कि ये सभी अन्तर्राष्ट्रीय नियमों का बाधित रूप से पालन करेंगे ।

जब आचरण में किसी नियम को बाध्यकारी रूप से लागू होने वाला समझ लिया जाता है तो वह कानून बन जाता है । औपचारिक सन्धियां और अभिसमय सम्बन्धित पक्षों की स्वीकृति पर आधारित होते हैं । ओपेनहीम के अनुसार भी राज्यों की सामान्य सहमति अन्तर्राष्ट्रीय कानून के विकास का आधार रही है । यह सहमति स्पष्ट (Express) तथा परिलक्षित (Implied) दोनों ही होती है ।

इस सिद्धान्त की भी आलोचना की जाती है । फेनविक के अनुसार सहमति का सिद्धान्त यह बताने में असमर्थ है कि भूतकाल में सरकारों ने किस अनुमान के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय विधि में प्रारम्भ से कार्य करना शुरू किया था ।

स्टार्क के मतानुसार सहमति का सिद्धान्त अन्तर्राष्ट्रीय कानून के वास्तविक तथ्यों से मेल नहीं खाता । रिवाज सम्बन्धी नियमों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि यह कहना असम्भव है कि राज्यों ने इनका पालन करने की सहमति दी है ।

जब नए राष्ट्र का जन्म होता है तो वह न तो अन्य राष्ट्रों से अन्तर्राष्ट्रीय कानून के नियमों के पालन करने की सहमति लेता है और न उससे ही अन्य राष्ट्र किसी प्रकार की सहमति लेते हैं । इतिहास भी इस बात का साक्षी है कि कभी भी सब राष्ट्रों ने मिलक या एक-एक करके अन्तर्राष्ट्रीय विधि के सिद्धान्तों को मानने की सहमति नहीं

प्रदान की । अन्तर्राष्ट्रीय कानून सभी राष्ट्रों पर लागू होता है, चाहे वे इसकी सहमति दें या न दें ।

अन्तर्राष्ट्रीय कानून का सच्चा आधार:-

अन्तर्राष्ट्रीय कानून के पालन के उपर्युक्त दोनों आधार दोषयुक्त हैं । कानून के पालन का सही आधार यही हो सकता है कि, राज्यों की यह भावना है कि इन कानूनों का पालन किया जाना चाहिए । कुछ विचारकों का मत है कि, वर्तमान परिस्थितियों में अन्तर्राष्ट्रीय कानून का राष्ट्रीय कानून से भिन्न कोई आधार तलाश करना अतार्किक है ।

जिस प्रकार राज्य का कानून केवल ऐतिहासिक विकास की एक घटना नहीं वरन् मानवीय संस्था का आवश्यक तत्व है उसी प्रकार आधुनिक परिस्थितियों में विभिन्न राज्य सामाजिक प्राणी बन गए हैं और उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय समाज के दूसरे सदस्यों के साथ मिलकर रहना है । व्यक्तियों के आपसी सम्बन्धों का नियमन करने के लिए कानून की जो आवश्यकता है वही राज्यों के आपसी सम्बन्धों का नियमन करने के लिए है ।

अन्तर्राष्ट्रीय कानून का सही आधार:-

(i) इसकी उपयोगिता, व

(ii) राज्यों की भावना ही है ।

फेनविक के अनुसार- "अन्तर्राष्ट्रीय कानून अपने अस्तित्व की आवश्यकता पर आधारित माना जा सकता है । आज की परिस्थितियों में लोग एक-दूसरे के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं और इसलिए अन्तर्राष्ट्रीय कानून आवश्यक है । इसके अतिरिक्त, अन्तर्राष्ट्रीय कानून के आधारों से सम्बन्धित विचार-विमर्श केवल शैक्षणिक महत्व रखता है ।"

अन्तर्राष्ट्रीय कानून के पीछे बाध्यकारी शक्तियां :-

प्राय: अन्तर्राष्ट्रीय कानून की तुलना राष्ट्रीय कानून से की जाती है । यह माना जाता है कि अन्तर्राष्ट्रीय कानून को लागू करने वाली कोई संस्थागत व्यवस्था नहीं है और राज्य अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के निर्णयों को उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं ।

अन्तर्राष्ट्रीय कानून की व्याख्या और क्रियान्वयन हेतु न्यायाधिकारों के पदसोपान का भी अभाव है इसलिए उनके पात्रों को लघु से उच्च न्यायालय तक पहुंचने का मौका ही नहीं मिल पाता है, किन्तु इन सब तथ्यों के बावजूद भी राज्य अन्तर्राष्ट्रीय कानून का पालन करते हैं ।

अन्तर्राष्ट्रीय कानून वर्तमान अवस्था में कतिपय प्रभावशाली शक्तियों की भी व्यवस्था करता है जो इस प्रकार हैं:-

(1) कानून के पालन की तरफ झुकाव:-

राज्यों की इच्छा कानून के पालन की है । कानून तोड़ने पर उन्हें ज्यादा हानि हो सकती है । ब्रियर्ली के अनुसार, अधिकांश राज्य यह मानते हैं कि कानून अराजकता को दूर करता है और शान्ति-व्यवस्था स्थापित करता है । अत: कानून पालन की इच्छा ही अन्तर्राष्ट्रीय कानून के लिए आधारभूमि तैयार करती है ।

(2) न्यस्त स्वार्थ:-

अधिकांश राष्ट्र यह महसूस करते हैं कि, अन्तर्राष्ट्रीय कानून के पालन से उनके राष्ट्रीय हितों की शीघ्र पूर्ति हो सकती है और उनकी विदेश नीति की सफलता भी राष्ट्रीय हितों के परिप्रेक्ष्य में ही सम्भव है । अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध आपसी लेन-देन पर आधारित होते हैं अत: कानून के द्वारा राज्य द्वारा जो कुछ अन्य राज्यों से प्राप्त किया गया है उसे बनाए रखने के इच्छुक होते हैं ।

(3) विश्व-जनमत:-

विश्व जनमत के भय से भी राज्य कानून को तोड़ना उचित नहीं मानते । राज्य ऐसा कोई कार्य नहीं करना चाहते जिससे विश्व में उनकी गरिमा पर आच आए । संयुक्त राष्ट्रसंघ की महासभा का मंच विश्व जनमत की अभिव्यक्ति का प्रमुख साधन है और यदि वहां किसी राज्य की आलोचना होती है तो उसका सर्वत्र प्रभाव पड़ता है ।

(4) सामाजिक सहमति:-

यदि अन्तर्राष्ट्रीय कानून को तोड़ा जाता है तो उस कार्य को विश्व समाज की मान्यता प्राप्त नहीं होती है । फिर कानून को तोड़कर शक्ति और युद्ध के तरीकों से राज्य जो रियायतें अन्य राज्यों से प्राप्त करते है उनमें अधिक खर्च और आर्थिक भार राज्य को वहन करना पड़ता है । कानून के प्रयोग से शान्तिपूर्ण वैध तरीकों द्वारा जो सुविधाएं राज्य प्राप्त करते हैं वे पारस्परिक सहमति और मितव्ययी साधनों से अर्जित होती हैं ।

(5) राजनयिक विरोध:-

यदि कोई राज्य कानून के प्रतिकूल आचरण करता है जिससे दूसरे राज्यों को हानि पहुंचती है तो उसके राजनयिक विरोध-पत्र द्वारा अपनी नाराजगी प्रकट करते हैं । कभी-कभी विरोध-पत्रों द्वारा राज्य अपनी गलतियों को सुधार लेते हैं ।

(6) सुरक्षा परिषद:-

कभी-कभी राज्य सुरक्षा परिषद में अन्तर्राष्ट्रीय कानून सम्बन्धी विवादों को रखते हैं । सुरक्षा परिषद् चार्टर के अनुच्छेद 10, 39, 41, 45 और 94(2) के तत्वावधान में कानून तोड़ने वाले राज्य के विरुद्ध कार्यवाही करती है । सुरक्षा परिषद् आर्थिक प्रतिबन्ध लगा सकती है और सेनाएं भी भेज सकती है ।

दक्षिण कोरिया पर उत्तर कोरिया का आक्रमण होने पर सुरक्षा परिषद् के 27 जून तथा 7 जुलाई, 1950 के प्रस्तावों के अनुसार पहली बार दक्षिण कोरिया की रक्षा के लिए 16 देशों के सहयोग से संयुक्त राष्ट्रसंघ ने सेनाएं भेजी और सैनिक कार्यवाही की ।

(7) युद्ध के कानूनों का उल्लंघन:-

वॉन ग्लॉन के अनुसार चार तरीकों से युद्ध के कानूनों का पालन कराया जाता है, युद्ध के कानून तोड़ने वाले के विरुद्ध प्रचार, युद्ध में अपराध करने वालों को दण्ड का भय, प्रत्यापहार और हानि पहुंचाने पर आर्थिक दृष्टि से क्षतिपूर्ति ।

(8) हस्तक्षेप:-

कभी-कभी राज्य वैयक्तिक और सामूहिक रूप से भी हस्तक्षेप करते हैं और उल्लंघनकर्ता को अन्तर्राष्ट्रीय कानून के पालन हेतु बाध्य करते हैं । कैल्सन के अनुसार, अन्तर्राष्ट्रीय विधि माने जाने वाले नियमों के उल्लंघन के लिए अन्तर्राष्ट्रीय विधि में अनुशास्तियों या दण्डों (Sanctions) का प्रयोग नागरिक विधि की भांति केन्द्रीभूत (संस्था या व्यक्ति के हाथ में) न होकर समस्त राष्ट्र समुदाय में उसी प्रकार विकेन्द्रीकृत है जैसा कि आद्य समुदायों में

होता रहा है, वे अन्तर्राष्ट्रीय विधि में अनुशास्तियों (Sanctions) का अभाव नहीं मानते, केवल उनके प्रयोग के ढंग, साधनकर्ता या सीमा में विशेषता बताते हैं ।

अन्तर्राष्ट्रीय कानून का संहिताकरण :-

अन्तर्राष्ट्रीय कानून अस्पष्ट, अनिश्चित एवं प्रथाओं पर आधारित हैं । इनमें सुधार लाने के लिए इनको संहिताबद्ध किया जाना आवश्यक है । संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर की धारा 13 में यह प्रावधान रखा गया है कि महासभा राजनीतिक क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग को प्रोत्साहन देने के लिए अध्ययनों की पहल करेगी और अन्तर्राष्ट्रीय कानून के विकास तथा संहिताकरण को प्रोत्साहन देगी ।

निम्नलिखित कारणों से संहिताकरण की मांग बढ़ती जा रही है:-

(1) संहिता बन जाने पर अन्तर्राष्ट्रीय विधि का प्रयोग सरल हो जाता है,

(2) संहिताकरण के परिणामस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय कानून का एक व्यवस्थित प्रबन्ध प्राप्त हो सकेगा,

(3) संहिता बन जाने पर सन्देहों का निराकरण होगा,

(4) अनेक ऐसे विषयों में नियम बना दिए जाएंगे जिनमें अभी तक कोई नियम नहीं थे ।

ओपेनहीम के अनुसार, "अन्तर्राष्ट्रीय कानून की अस्पष्टता एवं धीमी गति से आगे बढ़ने की प्रक्रिया के कारण ही संहिताकरण की मांग जोरों से बढ़ रही है ।" विधि के संहिताकरण का अर्थ विभिन्न दृष्टिकोणों से प्रतिपादित किया गया है । साधारण शब्दों में संहिता संविधियों का एक संकलित रूप है । (A code is consolidation of the statute law) अथवा यह एक संग्रह है जिसमें किसी विशेष विषय सम्बन्धी सभी संविधियों का संग्रह है ।

अन्तर्राष्ट्रीय कानून के संहिताकरण से अभिप्राय हे रीति-रिवाज तथा प्रचलित कानूनों पंचनिर्णयों तथा अन्य प्रकार के नियमों को एकत्र करके एक टीका या पुस्तक का रूप देना । संहिताकरण से कई लाभ हैं । इनसे अन्तर्राष्ट्रीय कानून स्पष्ट, सरल और सुनिश्चित बन जाएगा ।

संहिताकरण के फलस्वरूप सम्बन्धित परिस्थिति के लिए स्पष्ट कानून उपलब्ध हो जाएगा तो अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के न्यायाधीशों का कार्य सुगम हो जाएगा । संहिताकरण द्वारा कानूनों में पाए जाने वाले विरोधों को दूर किया जा सकता है और इस प्रकार उनके बीच में उसी तरह एकरूपता (Uniformity) स्थापित की जा सकती है जिस तरह राज्यों के कानूनों में एकरूपता पायी जाती है ।

संहिताबद्ध कानून शीघ्र ही समयानुकूल बन जाता है और उसकी लोकप्रियता बढ़ जाती है । यदि सपूर्ण कानून को लिख दिया जाए तो इसकी गणना सामाजिक विज्ञानों में अग्रणी हो जाएगी । संहिताकरण के मार्ग में अनेक कठिनाइयां हैं, बिखरे हुए कानूनों का संहिताकरण एक दुस्साध्य है ।

संहिताओं के बारे में मत-भिन्नता पायी जाती है । प्रत्येक राज्य अपने हितों के अनुरूप ही संहिताओं का निर्माण करना चाहता है । इस प्रकार मतैक्य के अभाव में संहिताओं का निर्माण दुःसाध्य है । यह भी समस्या है कि संहिताकरण किसके द्वारा किया जाए ? कानूनवेत्ताओं द्वारा या राज्यों के प्रतिनिधियों द्वारा ?

संहिताकरण की प्रक्रिया के द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय कानून की वास्तविकता तथा इसकी स्पष्ट उपस्थिति प्रकट हो रही है । अब यह आशा की जाने लगी है कि संयुक्त राष्ट्रसंघ के तत्वावधान में अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्थापन की प्रक्रिया कानून की अनेक असंगतियों को मिटाने में समर्थ हो सकेगी ।

आवश्यकता इस बात की है कि, प्रत्येक राज्य संहिताकरण को अपना राष्ट्रीय उद्देश्य घोषित करे तथा उसके लिए भरसक प्रयास करे । संहिताकरण एक बन्धन नहीं है अपितु आपाधापी एवं अराजकता को मिटाने का एक साधन हो सकता है बशर्ते विभिन्न राज्य इसका आदर करें । फिर भी यह कहना समुचित होगा कि इस क्षेत्र में अभी लम्बी मंजिल तय करनी है, अभी तो केवल कार्य प्रारम्भ ही किया गया है ।

परम्परावादी अन्तर्राष्ट्रीय कानून :-

प्रारम्भिक अन्तर्राष्ट्रीय कानून उपनिवेशवादी और साम्राज्यवादी युग की विरासत कहा जा सकता है । कुछ विद्वान इसे पश्चिमी यूरोपीय ईसाई सभ्यता की देन भी कहते हैं । परम्परावादी कानून का ध्येय बड़ी शक्तियों के राष्ट्रीय न्यस्त स्वार्थों की पूर्ति करना तथा उनकी शक्ति को बनाए रखना था ।

वे ऐसे ही कानूनों के निर्माण में रुचि लेते थे ताकि उन्हें गरीब और गुलाम देशों से समस्त प्रकार की रियायतें मिलती रहें और उनके राष्ट्रजनों की सुरक्षा कर सकें । अन्तर्राष्ट्रीय कानून को आधार बनाते हुए बड़ी शक्तियों ने कमजोर देशों के साथ असमान सन्धियां भी कीं और उनका प्रयोग छोटे राष्ट्रों के शोषण हेतु किया गया ।

वस्तुत: परम्परावादी अन्तर्राष्ट्रीय कानून की पांच विशेषताएं देखी जा सकती हैं:-

(i) अन्तर्राष्ट्रीय कानून का प्रयोग कमजोर राष्ट्रों के आर्थिक शोषण के रूप में किया गया ।

(ii) कमजोर देशों के साथ अन्तर्राष्ट्रीय कानून की ओट में असमान सन्धियां की गयीं और उन्हें दासता की बेड़ियों में बांधा गया ।

(iii) परम्परावादी कानून द्वारा शक्ति और युद्ध के प्रयोग को उचित बताया गया ।

(iv) परम्परावादी कानून द्वारा इस बात की ओर ध्यान नहीं दिया गया कि महाशक्तियां छोटे और कमजोर राष्ट्रों के आन्तरिक मामलों में जो हस्तक्षेप करती हैं, वह कानूनसम्मत नहीं है ।

(v) इसके द्वारा उपनिवेशवाद और असमान सन्धियों को स्वीकृति प्रदान की गयी ।

अन्तर्राष्ट्रीय कानून में नयी प्रवृत्तियां :-

परिवर्तन और विकास जीवन का कानून है और अन्तर्राष्ट्रीय कानून भी एक जीवन्त कानून है । वैज्ञानिक और तकनीकी परिवर्तनों के प्रभाव से अन्तर्राष्ट्रीय कानून भी कैसे अछूता रह सकता है ? वर्तमान में अन्तर्राष्ट्रीय कानून के विभिन्न अंगों में एक नया रूप नयी दिशा का उद्‌भव हो रहा है ।

अन्तर्राष्ट्रीय कानून के ढांचे मे कतिपय नूतन परिवर्तन इस प्रकार हुए हैं:-

(1) अन्तर्राष्ट्रीय कानून का सच्चा अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप:-

द्वितीय महायुद्ध से पूर्व अन्तर्राष्ट्रीय कानून एक सीमित कानून था । इसे 'यूरोपीय राज्यों के क्लब' (Small Club of European Powers) का कानून कहा जाता था, किन्तु द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरान्त एशिया अफ्रीका तथा लैटिन अमरीका के अनेक राज्यों को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई । ये राज्य विश्व-संस्था के सदस्य बने विश्व के सामूहिक कार्यों में हिस्सेदार बने । अत: अन्तर्राष्ट्रीय कानून का क्षेत्र व्यापक हुआ है ।

(2) आर्थिक एवं सामाजिक गतिविधियों का संचालन:-

राज्यों की संख्या बढ़ने के साथ-साथ उनमें आर्थिक, सांस्कृतिक वैज्ञानिक तकनीकी ज्ञान का आदान-प्रदान एवं सहयोग बढ़ रहा है । पहले अन्तर्राष्ट्रीय कानून केवल राजनीतिक विषयों का ही निरूपण करता था किन्तु अब उसका क्षेत्र आर्थिक एवं आपसी सहयोग की सामाजिक गतिविधियों का नियमन हो गया ।

(3) शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व का अन्तर्राष्ट्रीय कानून:-

आज दुनिया विश्व विचारधारा (Ideology) के आधार पर दो गुटों में विभक्त है । दोनों ही गुटों की अलग-अलग विचारधारा एवं दृष्टिकोण हैं । यदि विभिन्न राष्ट्र शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व की नीति को न मानकर एक-दूसरे को आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक सहयोग न प्रदान करें तो किसी प्रकार का अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार सम्भव न होगा और अन्तर्राष्ट्रीय नियमों का पालन न हो सकेगा ।

इसका पालन तभी हो सकता है जब सब राष्ट्र अपने से विरोधी विचारधाराओं वाले राष्ट्रों का अस्तित्व स्वीकार करें अर्थात् शान्तिपूर्ण-अस्तित्व की नीति को अपना लें । अत: आज सभी देश इसी भावना से अन्तर्राष्ट्रीय कानून को मान्यता दे रहे है ।

(4) क्षेत्रीय सहयोग का सीमित अन्तर्राष्ट्रीय कानून:-

आपसी हितों को पूरा करने के लिए राज्यों के बीच अनेक क्षेत्रीय सब्धियां एवं समझौते होते रहते हैं । इससे सीमित अन्तर्राष्ट्रीय कानून का विकास होता है, जिसका सम्बन्ध विशेष प्रकार के आपसी कार्यों से ही होता है ।

(5) संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना से होने वाले परिवर्तन:-

डॉ नगेन्द्रसिंह के अनुसार, संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना के फलस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय कानून में अनेक नए परिवर्तन हुए हैं ।

उनमें से कुछ इस प्रकार हैं:-

(i) इससे साम्राज्यवाद का अन्त हुआ और विश्व परिवार के सदस्यों में वृद्धि हुई ।

(ii) महासभा की शक्ति में वृद्धि हुई है और विश्व-संस्था का लोकतन्त्रीकरण हुआ है ।

(iii) व्यवसाय एवं वाणिज्य हितों के संचालन के नए-नए कानूनों का प्रादुर्भाव हो रहा है ।

(iv) अन्तर्राष्ट्रीय कानून के पीछे प्रभावशाली शक्ति (Effective Sanctions) का प्रयोग भी हुआ है, जैसे कोरिया संकट के समय, रोडेशिया व दक्षिण अफ्रीका के विरुद्ध आर्थिक प्रतिबन्ध लगाए गए, आदि ।

(v) वैज्ञानिक आविष्कारों के परिणामस्वरूप विध्वंसकारी शक्तियां बढ़ रही हैं । आणविक परीक्षण बन्द (Test Ban Treaty), तथा अणु अप्रसार सन्धि (Non-Proliferation Treaty), 1967 द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों के प्रति शक्तिशाली राज्यों में भी अन्तर के भाव जाग्रत हो रहे हैं ।

(6) अन्तर्राष्ट्रीय विकास का कानून:-

विकास शान्ति का नया नाम भी है और अन्तर्राष्ट्रीय कानून को आज गरीब देशों के विकास द्वारा विश्व की स्थिरता एवं स्थायी शान्ति सम्भावनाएं खोजनी हैं । इसके लिए आवश्यक है कि विकसित देश इस दिशा में पहल करें और अपने अस्थायी हितों का त्याग करें । उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय समाज के लिए नए लक्ष्यों व मानकों की प्राप्ति की दिशा में सहायता व सहयोग देना चाहिए ।

अन्तर्राष्ट्रीय कानून को भी अन्तर्राष्ट्रीय समाज के मतैक्य पर आधारित उन अन्तर्राष्ट्रीय दायित्वों का निर्वाह करना चाहिए जो कि इसके सदस्यों के लिए हितकारी हैं । संयुक्त राष्ट्र घोषणापत्र में निहित कर्तव्य को अधिक सार्थकता देते हुए उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय कानून द्वारा मान्यता मिलनी चाहिए ।

(7) अन्तर्राष्ट्रीय कानून का नया अभिमुखीकरण:-

परम्परावादी कानून को अनेक प्रकार से चुनौतियां दी गयी हैं । राज्यों के उत्तरदायित्वों से सम्बन्धित समस्त कानूनों तथा विदेशों में बसे नागरिकों से सम्बन्धित राजनयिक सुरक्षा के समस्त नियमों को चुनौती दी गयी है और उन्हें प्राचीन घोषित कर दिया गया है ।

विदेशी सम्पति के स्वामित्व और देय क्षतिपूर्ति की राशि सम्बन्धी पुराने कानूनों को परिवर्तित किया जा रहा है । आज अभिग्रहण कानूनों के उत्तराधिकार को चुनौती दी गयी है और प्राकृतिक सम्पदा एवं स्रोतों पर प्रभुसत्ता के अधिकार पर बल दिया जाता है ।

(8) अन्तर्राष्ट्रीय कानून के निर्माण में नयी प्रवृत्ति:-

अन्तर्राष्ट्रीय कानून के निर्माण के सम्बन्ध में पुराना मत यह था कि यह खास तौर से राज्यों द्वारा बनाया जाता हे । इसका आधार प्रथाएं और परम्पराएं हैं । आज नए अन्तर्राष्ट्रीय संगठन एवं इससे बनायी गयी विभिन्न संस्थाओं के द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय कानून के नियमों का निर्माण बड़ी तेजी से हो रहा है । आज तो हम नए अन्तर्राष्ट्रीय कानून के निर्माण के लिए किन्हीं अन्य स्रोतों की अपेक्षा संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा, अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय और कानूनवेताओं की ओर अधिक देखा करेंगे ।

(9) अन्तर्राष्ट्रीय कानून के विषय-राज्य और व्यक्ति:-

पुराना अन्तर्राष्ट्रीय कानून राज्यों का कानून था । अब यह राज्यों के साथ-साथ व्यक्तियों पर भी लागू होने लगा है । न्यूरेम्बर्ग जांच तथा टोक्यो जांच ने इस तथ्य की स्थापना कर दी है ।

आज पारम्परिक अन्तर्राष्ट्रीय कानून का स्वरूप बदलता जा रहा है । अमरीका और रूस के मधुर सम्बन्धों के परिप्रेक्ष्य में अन्तर्राष्ट्रीय कानून के विकास के नए आयाम उजागर हुए हैं ।

अन्तर्राष्ट्रीय कानून के कमजोरियां :-

ओपेनहीम के अनुसार- 'अन्तर्राष्ट्रीय कानून एक कमजोर कानून है ।' इसमें कई दोष हैं और अभी तक यह राष्ट्रीय कानूनों की तुलना में अपूर्ण है ।

इसकी कमजोरियां निम्न प्रकार हैं:-

(1) व्यवस्थापन सम्बन्धी कमजोरियां:-

अन्तर्राष्ट्रीय कानून का निर्माण करने वाली अथवा संशोधन करने वाली व्यवस्थापिका का अभाव है । जिस प्रकार राज्यों में संसद के द्वारा कानूनों का निर्माण किया जाता है उसी प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में इस प्रकार की मान्य संसद का अभाव है । संयुक्त राष्ट्रसंघ की महासभा को कानून निर्मात्री संस्था की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है ।

(2) कार्यपालिका सम्बन्धी कमजोरियां:-

अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों को कार्यान्वित करने वाले निकाय का अभाव है । अन्तर्राष्ट्रीय नियमों को तोड़ने वाले राज्यों को दण्ड देने वाले निकाय के अभाव में यह कानून राज्यों की इच्छा पर निर्भर हो जाता है । शक्तिशाली राज्य कानूनों की अवहेलना करते रहते हैं परन्तु उनको रोकने वाला कोई नहीं है । मुसोलिनी ने अबीसीनिया पर आक्रमण किया अमरीका ने वियतनाम युद्ध में कानूनों को तोड़ा, चीन ने वियतनाम पर आक्रमण किया, किन्तु कोई कहने-सुनने वाला नहीं था ।

(3) न्यायपालिका सम्बन्धी दोष:-

राज्यों के बीच विवादों का निपटारा अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय अधिग्रहण न्यायालय तथा पंच निर्णयों द्वारा होता है, किन्तु यदि ये निर्णय राज्यों के हितों के प्रतिकूल हैं तो वे उनका पालन नहीं करते हे । कानून भंग करने वालों को स्पष्ट दण्ड मिल पाना कठिन हो जाता है । दक्षिणी अफ्रीका ने अन्तर्राष्ट्रीय कानून को कई बार दक्षिण-पश्चिम अफ्रीका के विवाद भारतीय एवं काले लोगों के प्रश्नों को लेकर तोड़ा है किन्तु उसे कोई दण्ड नहीं मिल पाया है ।

(4) राज्यों की सम्प्रभुता एवं अतिवादी राष्ट्रीयता:-

कोई भी राज्य अपनी सम्पभुता को खोना नहीं चाहता । राष्ट्रीयता की अन्धभावना के परिणामस्वरूप वे अन्तर्राष्ट्रीय कानून की चिन्ता ही नहीं करते । इजरायल ने अरबों पर आक्रमण किया चीन ने भारत पर आक्रमण किया-इन सबका कारण उग्र राष्ट्रीयता ही है ।

(5) घरेलू मामलों का संयुक्त राष्ट्र चार्टर में प्रावधान:-

संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर के अनुसार राज्यों के घरेलू मामलों में हस्तक्षेप करना अपवर्जित है । अन्तर्राष्ट्रीय कानून को लागू करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएं उनके आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं कर सकतीं और कानून का उल्लंघन मूक दर्शक की भांति देखती रहती हैं ।

(6) अन्तर्राष्ट्रीय कानून की अस्पष्टता तथा अनिश्चितता:-

अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अधिकांश नियम अभी तक सुस्पष्ट नहीं हो पाए हैं । अभी तक इसका संकलन एक समस्या बनी हुई है । इसका आधार आज भी आपसी समझौते हैं ।

ब्रियर्ली ने ठीक ही लिखा है, "वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय विधि की दो बड़ी कमजोरियां हैं । इस कानून को बनाने और लागू करने वाली संस्थाएं बड़ी आरम्भिक दशा में हैं और इसका क्षेत्र बहुत संकुचित है । इस कानून का निर्माण करने वाली कोई ऐसी संस्था नहीं है जो इस कानून को अन्तर्राष्ट्रीय समाज की नयी आवश्यकताओं के अनुसार ढाल सके ।"

अन्तर्राष्ट्रीय कानून के सुधार के सुझाव :-

अन्तर्राष्ट्रीय कानून के उपर्युक्त दोष उसके महत्व एवं उपयोगिता को घटा देते हैं ।

इन दोषों को हटाने और इस कानून को संवारने के लिए विचारकों ने अनेक सुझाव प्रस्तुत किए हैं, जो इस प्रकार हैं:-

(i) संहिताकरण:-

अन्तर्राष्ट्रीय कानून को संहिताकरण द्वारा स्पष्ट तथा निश्चित किया जाना चाहिए । संहिताओं को विभिन्न राज्यों द्वारा स्पष्ट स्वीकृति एवं मान्यता मिलनी चाहिए । यदि संहिताएं राज्यों की सहमति पर आधारित की

जाएंगी तो इनके सम्मान में वृद्धि होगी ।

(ii) अन्तर्राष्ट्रीय कानून या प्रचार:-

विभिन्न छोटे-बड़े राज्यों के मध्य अन्तर्राष्ट्रीय कानून के महत्व एवं उपयोगिता को प्रचार द्वारा स्पष्ट किया जाना चाहिए ।

(iii) कानून तोड़ने वालों को पर्याप्त दण्ड:-

अन्तर्राष्ट्रीय कानून का उल्लंघन करने वाले राज्यों को किसी न किसी प्रकार का दण्ड अवश्य मिलना चाहिए । उसकी अन्तर्राष्ट्रीय निन्दा की जानी चाहिए तथा सुरक्षा परिषद अथवा सामूहिक सुरक्षा के प्रावधानों के अन्तर्गत ऐसे राज्यों पर आवश्यक प्रतिबन्ध लगाने की व्यवस्था की जानी चाहिए ।

(iv) अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के क्षेत्राधिकार में वृद्धि:-

अन्तर्राष्ट्रीय कानून से सम्बन्धित विवादों का निपटारा अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के द्वारा किया जाना चाहिए एवं इसके निर्णय बाध्यकारी माने जाने चाहिए । वर्तमान समय में राज्य अपने जो मामले न्यायालय के सामने स्वेच्छापूर्वक लाते रहे हैं, इसमें न्यायालयों को बड़ी सफलता मिली है । यदि राज्यों के विवादों का निपटारा अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के द्वारा आवश्यक रूप से किया जाए तो समस्याओं का शान्तिपूर्ण निपटारा ढूंढा जा सकता है । इससे अन्तर्राष्ट्रीय कानून को सुदृढ़ आधार प्राप्त होंगे ।

(v) अन्तर्राष्ट्रीय कानून के क्षेत्र का विस्तार:-

वर्तमान में अन्तर्राष्ट्रीय कानून केवल राज्य पर ही लागू होता है । इसे व्यक्तियों पर लागू किया जाए तथा घरेलू मामलों में भी लागू किया जाए । यदि राज्य के कार्यो से किसी व्यक्ति को हानि पहुंचती है तो उसे अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय में अपने हक की पेशकश करने का अधिकार होना चाहिए ।

(vi) राज्यों की सम्प्रभुता के साथ मेल:-

वर्तमान युग अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग का युग है । विभिन्न राज्यों को उग्र सम्पभुता के विचार को त्यागना होगा । राज्यों की सरकारों को विश्वबन्दुत्व एवं शान्ति के लिए अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय कानून की सत्ता स्वीकार कर लेनी चाहिए । इससे राज्यों की सम्पभुता का अन्तर्राष्ट्रीय कानून के साथ-साथ चलन सम्भव हो जाएगा ।